

निम्नलिखित श्लोक की व्याख्या सोदाहरण करें-

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला। तत्रापि चतुर्थोऽङ्कस्तत्र श्लोकचतुष्टयम् ॥

अभिज्ञानशाकुन्तल के चतुर्थ अंक का प्रारम्भ रौद्र रस से हुआ है और अवसान करुण रस में। इसमें जहाँ एक ओर दुर्वासा-सदृश प्रकृति से क्रोधी मुनि के कटुशब्द कर्णगोचर होते हैं तो दूसरी ओर शमप्रधान तपोधन कण्व ऋषि की त्याग, ब्रह्मतेज एवं वात्सल्यमयी मूर्ति के दर्शन होते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तल का यही एकमात्र ऐसा अंक है जिसमें दर्शकों को कुलपति कण्व के रंगमंच पर दर्शन होते हैं और नायक का रंगमंच से तिरोभाव बना रहता है, यद्यपि तत्सम्बन्धिनी कथा अविकल रूप से चलती रहती है। इस अंक में शकुन्तला की विदाई का वर्णन ही प्रधान है जिससे प्रसंग में अति मार्मिकता और भावुकता के दर्शन होते हैं।

चतुर्थ अंक को शाकुन्तल में सर्वोत्तम मानने का प्रमुख कारण यही है कि इसमें करुण भाव का बड़ा ही विशद एवं मार्मिक चित्रण हुआ है। पुत्री की विदाई पर उसके माता-पिता के हृदय में जो करुण वात्सल्य उमड़ पड़ता है उसका कवि ने बड़ा ही स्वाभाविक तथा आकर्षक चित्रण किया है। गृहस्थ लोग तो संसारी जीव होने के कारण माया मोह में लिप्त रहते हैं अतः पुत्री के वियोग पर उनके चित्त में विक्षोभ होना उतनी बड़ी बात नहीं जितनी कि कण्व सदृश वीतराग आरण्योकस के चित्त का पीडित होना। पुत्री आज पति गृह जायेगी, इस कल्पना से पिता का उद्गार कितना मार्मिक है (4.6)-

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया कण्ठः स्तम्भितवाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥

कन्या पराया धन है। उसे सुरक्षित रूप से उसके गृहीता के पास भेजने में पिता को सन्तोष-जनित सुख भी होता है। कण्व के ही शब्दों में-

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य सम्प्रेष्य परिग्रहीतुः।

जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा ॥ 4.22॥

इधर पति-गृह जाती हुई पुत्री के हृदय में औत्सुक्य और विषाद का जो द्वन्द्व होता है, उसका भी कवि ने यथार्थ चित्रण किया है। शकुन्तला अपनी सवयस्का सखी प्रियंवदा से कहती है कि यद्यपि उसके मन में आर्यपुत्र के दर्शन की उत्सुकता है किन्तु अपनी बाल्य क्रीडा भूमि आश्रम को छोड़ने में उसे दुःख होता है- “हला प्रियंवदे! नन्वार्यपुत्रदर्शनोत्सुकाया अप्याश्रमपदं परित्यजन्त्या दुःखेन में चरणौ पुरतः प्रवर्त्तेते।”

उसको अपने पिता तथा सखियों से स्नेह तो है ही, आश्रम के प्रत्येक लता, पादप तथा पशु-पक्षियों से भी उसका सोदरस्नेह है। इस स्नेह से अभिभूत होकर वह अपनी लताभगिनी 'वनज्योत्स्ना' से विदा लेने जाती है।

इस अवसर पर पिता का अपनी पुत्री को उपदेश तथा जामाता से निवेदन भी आवश्यक हो जाता है। इस उपदेश तथा निवेदन में भी पित-हृदय की करुणवेदना ही छिपी रहती है। पुत्री के सुख-सौभाग्य की कामना करते हुए ऋषि कण्व अपनी पुत्री को सदुपदेश देते हुए कहते हैं-

शुश्रूषस्व गुरुन् कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने

भतुर्विप्रकृतापि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।

भूयिष्ठ भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी

यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः ॥ 4.18॥

तुम सास-ससुर आदि गुरुजनो की सेवा करना, सपत्नियों के साथ प्रिय सखियों-जैसा व्यवहार करना, पति के द्वारा अपमानित होने पर भी रोष से उनके विरुद्ध आचरण मत करना, सेवकों के प्रति अत्यन्त उदार रहना और अपने भाग्य पर गर्व मत करना। इस प्रकार आचरण करने वाली युवतियां ही 'गृहिणी' नाम को सार्थक करती हैं और इसके विपरीत आचरण करने वाली तो कुल के लिए अभिशाप होती हैं।

चूँकि दुष्यन्त वहाँ उपस्थित नहीं है, अतः शकुन्तला को अपने साथ लिवाकर ले जाने वाले वटुओं में से एक - शाङ्गरव- के माध्यम से दुष्यन्त के प्रति अपना भावभीना संदेश देते हुए भगवान् कण्व कहते हैं-

अस्मान् साधु विचिन्त्य संयमधनानुच्चैः कुलं चात्मन-

स्त्वय्यस्याः कथमप्यबान्धवकृतां स्नेहप्रवृत्तिं च ताम् ।

सामान्यप्रतिपत्तिपूर्वकमियं दारेषु दृश्या त्वया

भाग्यायत्तमतः परं न खलु तद्वाच्यं वधुबन्धुभिः ॥ 4.17॥

अर्थात् हम तपस्वियों की निश्छलता, अपने उच्चकुल तथा बिना हमारी अनुमति के इसके द्वारा तुमसे किये गये प्रेम का अच्छी तरह विचार करके तुम्हें इसके साथ अपनी अन्य पत्नियों के समान ही व्यवहार करना चाहिए, इसके बाद जो कुछ भी हो, वह उसके भाग्य की बात होगी। अतः उस विषय में हमें कोई आपत्ति भी नहीं होगी।

शकुन्तला प्रकृति-पुत्री है। आश्रम के लता-वृक्षों तथा पशु पक्षियों के साथ उसका सोदरस्नेह है। वह पहले वृक्षों को जल पिलाकर जल पीती थी, अलंकार प्रिया होने पर भी स्नेह के कारण वह

उनका एक पत्ता भी नहीं तोड़ती थी तथा उनके प्रथम पुष्पोद्भव के समय वह पुत्रोत्सव मनाती थी। भाव-विह्वल भगवान् काश्यप ने आश्रम के वृक्षों को सम्बोधन कर यही तो कहा था-

पातु न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम् ।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ॥ 4.9॥

तुरन्त ही कोकिलरव द्वारा वनवासब धु वक्षो द्वारा अनुमति प्रदान कर दी जाती है और आकाश में वन देवताओ का आशीवचन गूज उठता हैRAM

रम्यान्सर कमलिनीहरितै सरोभि

श्रद्धाया द्र मैनियमितार्कमयूखताप । भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरस्या

शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्च पथा ॥

वन के समस्त वृक्षादि ने शकुन्तला को पति-गृह जाने की अनुमति दे दी मानों कोयल के स्वर से अपने मंतव्यों को प्रकट कर रहे हों-

अनुगतगमना शकुन्तला तरुभिरियं वनवासबन्धुभिः।

परभृतविरुतं कलं यथाप्रतिवचनीकृतमेभिरीदृशम्॥4.10॥

प्रकृति में यह प्रबोध है कि सुकुमार पालने में पली हुई शकुन्तला अब वनवास का त्याग कर राजमहिषी होने जा रही है। ऐसी स्थिति में उसके लिए वल्कल वस्त्र तथा पुष्पाभरण कदापि उपयुक्त नहीं हैं। अतः तपोवन की वनस्पतियों ने उसके लिए राजसी परिधान उपहार में दिये जिनका उल्लेख निम्नांकित श्लोक में है---

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरुणा माङ्गल्यमाविष्कृतं

निष्ठ्यूतश्चरणोपरागसुभगो लाक्षारसः केनचित् ।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै-

र्दत्तान्याभरणानि नः किसलयोद्धेदप्रतिद्वन्द्विभिः॥ 4.5॥

अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति का जैसा सुन्दर समन्वय अभिज्ञानशाकुंतल के चतुर्थ अंक में हुआ वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। कवियों को मानव के दुःख और सुखों की अनुभूति का आभास प्रकृति में भी होता रहा है जैसे शकुन्तला पति के वियोग में खिन्न है और उधर चन्द्रमा के छिपने से कुमुदिनी की अवस्था दयनीय हो गयी है-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुद्वती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीयशोभा।

इष्टप्रवासजनितान्यबलाजनस्य दुःखानि नूनमतिमात्रसुदुःसहानि॥ 4.3॥

यह तो मानव-मन की अनुभूतियों का प्रकृति पर आरोपमात्र है। आश्रमवासियों की तरह आश्रम के लता पुष्प तथा पशु-पक्षी भी शकुन्तला की विदाई के कारण दुःखी हैं। मृगियाँ दर्भ नहीं खा रही हैं, मोरों ने नाचना छोड़ दिया है और लताएँ आंसुओं के रूप में पाण्डुपत्र विसर्जित कर रही हैं-

उद्दलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः ॥ 4.12॥

पशु-पक्षियों की चेतना मुखर है। वे अपने प्रिय से प्रेम तथा अप्रिय से भय अथवा वैर करने में कोई भूल नहीं करते। जिस मृगशावक को शकुन्तला ने पुत्रवत् पाला था वह पतिगृहगमनोत्सुक शकुन्तला का वस्त्र खींचने लगता है। (अभि० ४-१४) और शकुन्तला उसे देख वात्सल्य से अभिभूत होकर रो पड़ती है। यदि शकुन्तला प्रिय-मिलन के लिए आतुर है तो चकवी भी चकवा से क्षण भर के लिए वियुक्त नहीं रहना चाहती।

चतुर्थ अंक में कालिदास ने जिस करुण भाव की व्यञ्जना की है उससे प्रकृति का कण-कण अभिभूत है। अन्तःप्रकृति और बाह्य-प्रकृति का यह ऐकात्म्य इस अंक को समूचे नाटक में रम्यतम बना देता है। इस अंक के चार सर्वश्रेष्ठ श्लोक हैं-

यास्यत्यद्य० (६), अस्मान् साधु० (१७), शुश्रूषस्व गुरून्० (१८), अर्थो हि कन्या० (22) शाकुन्तल के चतुर्थ अंक का सौन्दर्य वर्णनातीत है। उसका कोई स्थल, कोई पंक्ति और कोई छन्द ऐसा नहीं जिसमें कोमलकान्त पदावली, सहज प्रवाहमाना भाषा तथा भावों की मनोरमता बिखरी हुई दृष्टिगोचर न होती हो। उसमें केवल काव्यात्मक सौन्दर्य ही नहीं जीवनोपयोगी बातों का भी बड़ा ही सजीव एवं यथार्थ चित्रण हुआ है। मनोभावों के सूक्ष्म विश्लेषण में भावुकता और मनोवैज्ञानिकता का मणिकांचन सुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। शकुन्तला के वियोग के दुःख में लताओं द्वारा पाण्डुपत्रों के रूप में आंसू गिराने में यदि भावुकता है तो मृगियों के ग्रास उगल देने, मयूरों के नृत्य त्याग कर देने तथा मृग शावक द्वारा शकुन्तला का वस्त्र खींचने में मनोवैज्ञानिकता है।

अतः सत्य ही कहा है कि काव्यों में नाटक रमणीय होता है और समस्त नाटकों में रमणीय अभिज्ञानशाकुन्तल है और अभिज्ञानशाकुन्तल में चतुर्थ अंक रमणीय है और चौथे अंक में चार श्लोक अत्यंत रमणीय हैं।